द्वितीय अध्याय

हिंदी साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियाँ

"इतिहास-लेख या इतिहासिकी (Historiography) का शाब्दिक अर्थ इतिहास लेखन की कला है। इतिहास-लेख ऐतिहासिक लेखन में विकास क्रम की कथा कहता है। इतिहास के लेखन से सम्बंधित बदलते विचारों और तकनीकों तथा स्वयं इतिहास के प्रति बदलते रुख भी इसमें शामिल हो गए हैं। अंततः यह मनुष्य के अतीत बोध के विकास का अध्ययन है।"[1] अलग-अलग युगों और अलग-अलग लोगों के ऐतिहासिक साहित्य की प्रकृति, गुणवत्ता और मात्रा में अंतर है। ये विभिन्नताएं सामाजिक जीवन और मान्यताओं तथा इतिहास बोध की उपस्थिति या अनुपस्थिति से प्रतिबंधित होती हैं। यूनानी और रोमन इतिहासकारों को उत्प्रेरित करने वाली भावना मध्ययुग के ईसाई इतिहासकारों की प्रेरणा से भिन्न थी। इतावली पुनर्जागरण का इतिहास लेखन, खासकर मैकियावेली का धार्मिक प्रभाव वाले इतिहास लेखन की घोर प्रतिक्रिया का उदाहरण था, "यह प्रतिक्रिया प्रबुद्ध युग के वाल्टेयर, गिब्बन, ह्यूम और राबर्टसन जैसे इतिहासकारों में चरम पर पहुंची, तब से परिवर्तन की गति ज्यादा बहुविध विचारों के प्रभाव में आती रही है। इतिहास की एक विशेष शाखा के रूप में इतिहास-लेख शताब्दियों के दौरान इन परिवर्तनों को अंकित करता है।"[2]

जहाँ इतिहास का अतीत स्वयं इतिहासकार द्वारा पुनर्निर्मित है वहां आर्थक मार्विक के अनुसार इतिहास-लेख दरअसल, इतिहास-चिंतन का इतिहास है- वह इतिहास का सिर्फ सिद्धांत या व्यवहार नहीं है। यूनानियों और चीनीयों जैसे प्राचीनकाल के विकसित साक्षर की आरंभिक रचनाओं में उसकी शुरुआत हुई, हालांकि काल गणना की किसी व्यवस्था और आलोचना के तौर-तरीकों के अभाव ने

इतिहासकार का काम अत्यंत कठिन और अनिश्चित बना दिया था। उन कच्ची शुरुआतों से लेकर हमारे अपने समय के जटिल और उन्नत विकार से इतिहास के लेखन ने बड़े फासले तय किए हैं। इतिहास की अनूठी शाखा इतिहास-लेख का अध्ययन मार्विक के शब्दों में शोधकर्ताओं और पेशेवरों के लिए खास महत्व का है लेकिन आम पाठक के लिए इतनी दिलचस्पी का विषय नहीं है। शताब्दियों से इतिहास कैसे लिखा जाता रहा है इसके उदाहरण पेश कर वह शोधछात्रों और पेशेवर इतिहासकारों का मार्गदर्शन करता रहा है।

दुनिया के विभिन्न जनसमुदायों और विभिन्न कालों में अतीत का जिज्ञासु बोध यानि ऐतिहासिक-बोध एकसमान मौजूद नहीं रहा है। प्राचीन यूनान और रोम तथा यहूदी एवं ईसाई धर्मों ने यूरोप से शक्तिशाली इतिहास-बोध विरासत में लिया है। इतिहास के प्राचीन चीनी और मध्यकालीन मुस्लिम विद्यालय उन सभ्यताओं के केन्द्रीय तत्व रहे हैं। उनकी तुलना में प्राचीन एवं मध्यकाल में हिन्दुओं का इतिहास-बोध नगण्य रहा है। इतिहास-चिंतन के उद्गम के विषय में विभिन्न सभ्यताओं की अपनी विशिष्ट परम्परागत अवधारणाएँ रही हैं। "इतिहास नामक अध्ययन शाखा की उत्पत्ति यूनान में मिलती है। इसका उद्गम बौद्धिक कार्य-व्यापार के महान उद्वेग की एक अभिव्यक्ति के रूप में हुआ। 'हिस्तोरे' वह विशेषज्ञ होता था जिससे वाद-विवाद के निबटारे के लिए अभ्यर्थना की जाती थी।"[3] यूनानी जाति के बारे में एक इतिहासकार लिखता है, "यूनानी जाति की ज्ञानपिपासा हिस्ट्री की परिभाषा में प्रस्फुटित हो उठी।"[4]

लेकिन ऐतिहासिक-बोध का अर्थ इससे कहीं ज्यादा होता है। इतिहास की तरह ही समाज विज्ञान के अन्य विषय चाहे समाजशास्त्र हो या नृतत्वशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र- समाज में मनुष्य की स्थिति का अध्ययन करते हैं जिसके दायरे में परिवर्तन की समस्या भी आ जाती है लेकिन आर्थर मार्विक लिखते हैं, "जो बात इतिहास को इन अन्य अनुशासनों से अलग करती है वह है कालगत परिवर्तन के तत्व की विशेष चिंता.....समाजविज्ञानी समाज में मनुष्य की गतिविधियों में दृष्टिगोचर

समान तत्वों और नियमित पैटर्न की तलाश करता है; इतिहासकार अलग-अलग कालावधि में समाजों के अंतर को देखते हैं कि कालक्रम में समाज कैसे विकसित और परिवर्तित हुए ।"[5] कालक्रम में परिवर्तन की यह मौलिक चिंता इतिहासकार को यह पता लगाने के लिए बाध्य करती है कि उसके द्वारा वर्णित घटनाओं का सटीक समय क्या है? घटनाओं के बयान विश्लेषण और व्याख्या के लिए उसे उनके होने का क्रम जानना जरुरी है।

2.1. इतिहास-लेखन की पद्धतियाँ :

क. यूनानी इतिहास-लेखन

ख. रोमन इतिहास-लेखन

ग. प्राचीन चीनी इतिहास-लेखन

क. यूनानी इतिहास-लेखन:

यूनानी इतिहास लेखन में सीधे रूप से ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं लिखे गए थे वरन उसके द्वारा आख्यान, काव्य, महाकाव्य, शासकों की स्मृति में रचे गए ग्रंथों में मौजूद जानकारी से ऐतिहासिक तथ्यों को निकालना पड़ा। पश्चिम का सारा इतिहास-लेखन हेरोडोटस और थूसीडाईडीस द्वारा लिखे गए ग्रंथों पर टिका है। धर्ममूलक इतिहास और काल्पनिकता से वास्तविक ऐतिहासिक साहित्य में संक्रमण उन्हीं के कार्यों से हुआ है। वे पूर्व के इतिहास-लेखन से अनभिज्ञ थे परन्तु फिर भी उनकी उपलब्धियां साफ़ उभर कर सामने आती हैं। यूनानी इतिहास-लेखन की विशेषता रहे आख्यान तथा काव्य हालाँकि इतिहास नहीं थे लेकिन वे अतीत में रूचि जगाते थे जिससे की अतीत की एक तस्वीर मनुष्य अपने मस्तिष्क में तैयार कर सकता था। कुछ लोक आख्यानों को काव्य के रूप इन्होंने संगठित किया उदाहरणत: प्राचीन बेबीलोनवासियों का गिल्गमेश या यूनानियों का इलियड। आख्यान कथा सुनाने की एक परम्परा होती थी जिसमें मानव अपने अनुभवों को साँझा करता था और जो आज भी है। लम्बे समय तक सम्प्रेषण के

फलस्वरूप कथा-काव्य किवदंतियों का रूप ले लेती थी। जहाँ से इतिहास को खोजने का कार्य शुरू होता है। इतिहास का उद्देश्य मनुष्य का आत्मज्ञान है, "इतिहास का मूल्य यह है कि वह हमें सिखाता है कि मनुष्य ने क्या किया है और किस तरह से सिखाता है कि मनुष्य क्या है? ड्रायसेन के शब्दों में, "मानवता का अपने बारे में ज्ञान ही इतिहास है।"[6]

इसके साथ ही यूनानी इतिहास-लेखन में राजवंशों व शासकों की वीरगाथाओं का भी वर्णन किया गया जहाँ से प्रारंभिक यूनानी इतिहास-लेख के अंशों को खोजने का प्रयास किया गया । ये वृत्तांत संस्मरणात्मक इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ संस्मरणात्मक अभिलेखों में अतिश्योक्ति की गुंजाइस रहती है, राजवंशावलियों में ऐसी विकृति की सम्भावना कम रहती है। यूनान में प्राचीन यहूदी पहले लोग थे जिन्होंने राष्ट्रीय इतिहास रचा। सभी आदिम जनजातियों की तरह यहूदी लोग भी अपने बच्चों को कथा सुनाते और लोकप्रिय किवदंतियां बताते थे। वे जिस प्रकृति (सृष्टि) में विश्वास रखते थे उससे मनुष्य के इतिहास का वर्णन करने की कोशिश के कारण सार्वभौम इतिहास की अवधारणा मानने वाले वे पहले लोग थे। लेकिन धीरे-धीरे यूनान में बौद्धिक संक्रमण का काल आता है जिसमें यूनान कल्पनाशीलता की बजाय मननशील होने लगा। धीरे-धीरे दर्शन और विज्ञान का उदय होने लगा। बौद्धिक मननशीलता में काव्यात्मक कल्पनाशीलता पर अंकुश लगा दिया। पड़ोसी लोगों के बारे में जानने की कोशिश में यूनानियों ने प्रत्यक्ष अनुसन्धान का महत्त्व पहचाना जो इतिहास के अर्थ का मूल है। इस शैली में लिखने वाले लोग लोगोग्राफर कहलाए। जिन्होंने काव्यात्मक शैली को छोड़कर सरल गद्य में नगरों, लोगों, मंदिरों, राजवंशों आदि के उद्भव से सम्बंधित मौखिक परम्पराओं और जनश्रुतियों को प्रस्तुत किया। इनकी शैली कलात्मक होती थी। पांचवीं शताब्दी में हेरोडोटस और थूसीडाइडिस के कामों में लोगोग्राफी पूर्ण विकसित हो गई प्रतीत हो रही थी।

हेरोडोटस (484-430 B.C.) :

हेरोडोटस का जन्म हैलीकार्नासस के एक उच्च कुल में 484 बी.सी.में हुआ था। 32 वर्ष की आयु में उसके चाचा ने उसे घर से निर्वासित कर दिया और उसने अपने निर्वासन का उचित लाभ उठाया। दूर-दराज की यात्राएं उन्हें अलग-अलग क्षेत्रों में लेकर गई। जहाँ उन्हें अलग-अलग लोगों की कथाएं सुनने को मिली और उसने उन्हें लिखना शुरू किया।

पद्धति :

दूसरे-तीसरे व्यक्ति से सुनी गई दूर-दराज की घटनाओं के बारे में लिखना हेरोडोटस की पद्धति थी। जिज्ञासा और तेज जानने की इच्छा और निरीक्षण की ताकत के बल पर वह जानने की कोशिश करता की चीजें कैसे घटित हुई। स्ट्रावों ने तो लिखा था कि, "हेरोडोटस की रचनाओं में बहुत उटपटांग भरा पड़ा है।"[7] हेरोडोटस में छोटे-मोटे व महत्त्वहीन चीजों का वर्णन करने की आदत थी। वह हर छोटी से छोटी चीजों का वर्णन करता था जिनका कोई महत्त्व नहीं होता था। लेकिन उसने बचाव में लिखा कि जो कहा जाता है उसे बताना मेरा दायित्व है परन्तु उसे मानने को मैं बाध्य नहीं हूँ और इस इतिहास में हर व्याख्यान के लिए यह सही मानिए। वह ढ़ीली-ढ़ाली, सहज, रूमानी और चमत्कृत करने वाली शैली में लिखता था जो मनोरंजन और अद्भुत कथाएं सुनने की लोगों की जरूरत पूरी करती थी। उसने प्रक्रियाओं से ज्यादा व्यक्तियों के बारे में लिखते हुए शानदार चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किए हैं, "इतिहास शब्द के प्रयोग और उसके निहितार्थ हेरोडोटस को इतिहास का जनक बनाते हैं, जनश्रुति लेखन को इतिहास के विचार में बदलना.....पाँचवीं शताब्दी का आविष्कार था और हेरोडोटस वह आदमी था जिसने यह आविष्कार किया।"[8]

थूसीडाइडिस (460-396 B.C.) :

थूसीडाइडिस के लेखन से पता चलता है कि उसने मानो इतिहासकारों को जानकारी देने और राजनेताओं को दिशा-निर्देश देने के लिए लिखा हो। उसके लेखन के लक्ष्य थे, "वे अनुसन्धानकर्ता जो अतीत का ठीक-ठाक ज्ञान इसलिए चाहते हैं कि भविष्य की व्याख्या में मदद मिले जो मानवीय कार्यकलापों में अतीत जैसा ही होगा।"[9] थूसीडाइडिस का मानना था कि, "उसका काम क्षणिक वाहवादी का ना होकर सार्वकालिक महत्त्व का हो।"[10] थूसीडाइडिस ने अपने जीवनकाल के 20 वर्षों को यात्रा करने में गुजारा खासकर पेलोपोनियस में जिससे ही उन्होंने 'पेलोपोनेशियाई युद्ध का इतिहास' लिखना शुरू किया।

पद्धति :

हेरोडोटस के विपरीत ये अपने स्त्रोतों पर कड़ी वैज्ञानिक पद्धति लागू करते थे और स्पष्ट आँकड़ों के आधार पर ही आगे बढ़ते थे। वह तार्किक प्रक्रिया में विश्वास करते थे। वह सुनी-सुनाई, मिथकों पर सीधे तौर पर भरोसा नहीं करते थे वरन उनकी पूरी जांच पड़ताल करने के पश्चात ही उन पर भरोसा करते थे। थूसीडाइडिस स्वयं स्वीकार करते हैं कि ये भाषण ज्यादातर काल्पनिक हैं लेकिन उनका दावा है कि हर ऐसा भाषण उस अवसर पर किये गए वास्तविक भाषण का सार प्रस्तुत करता है।

यूनानी इतिहास-लेखन की पद्धति और उसकी सीमाएं :

"हेरोडोटस और थूसीडाइडिस के लिए ऐतिहासिक स्त्रोतों का मतलब था प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा तथ्यों का बयान और इतिहास पद्धति का मतलब था, इन आख्यानों को प्राप्त करना। लेकिन हेरोडोटस और थूसीडाइडिस जीवित स्मृति में पीछे की जो बातें बताते हैं उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि उनकी पद्धति एवं स्त्रोत समय के दूरस्थ कालखंडों में नहीं जा सकते लेकिन फिर भी ये उनकी विफलता

नहीं थी। यदि दूरस्थ नहीं तो हाल के अतीत को वैज्ञानिक इतिहास के दायरे में लाना पांचवीं सदी के यूनानी इतिहास लेखन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हो गई थी। इतिहासकार सही मायनों में इतिहासकार न होकर महज अपनी पीढ़ी का आत्मकथावार होता था।"[11] इतिहासकार उन्हीं घटनाओं के बारे में लिख सकता था जो उसके जीवनकाल में घटित हुई थी। इसलिए एक बार जो लिख दिया गया उसमें सुधार की कोई गुंजाइस नहीं रहती थी।

ख. रोमन इतिहास-लेखन :

अपने कुलीन परिवारों के पूर्वजों के प्रति भक्ति के कारण प्राचीन रोमनों की अतीत के प्रति कुछ विशेष श्रद्धा थी । उनके प्राचीन अभिलेख इतिवृत्तात्मक थे जिनमें धार्मिक मान्यताओं और अन्धविश्वासी व्यवहार का मिश्रण था। इसके साथ ही यूनानियों की अपेक्षा रोमन ज्यादा व्यावहारिक थे और उनकी रूचि दर्शन की अपेक्षा इतिहास के ज्यादा अनुकूल थी। फिर भी रोमन इतिहास-लेख के उद्भव पर ग्रीक प्रभाव है।

केटो (234-149 B.C.):

केटो का ग्रंथ 'आरिजिंस रोमन' इतिहास-लेख के लिए क्रांतिकारी था। "जे.डब्लू. थाम्पसन इसे साहित्यिक आपदा मानते हुए लिखते हैं कि 'आरिजिंस' के बचे-खुचे हिस्से देखकर कहा जा सकता है कि वह आजतक के सबसे शिक्षाप्रद और दिलचस्प इतिहासों में से एक था।"[12] देशभक्ति की भावना भरने, नैतिकता सिखाने और युवाओं का चरित्र निर्माण करने जैसे इतिहास के शिक्षाप्रद उद्देश्य में केटो की गहरी रूचि थी । उसके कार्य में जातीय समूहों, स्थानीय भूगोल और आर्थिक प्रकृति की प्रचूर जानकारी थी। थाम्पसन आरिजिंस की एक और विचित्रता का जिक्र करता है जो केटो की विशिष्ट

पहचान है। वह सीधे-सादे आमजन को तरजीह देता था और मानता था कि रोम के युद्ध आम सैनिकों ने जीते हैं, इसके लिए सेनापति को श्रेय देना अनुचित था।

लिवि (59 B.C.-17 A.D.):

29 B.C. में टाईटस लिवि ने 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' लिखनी शुरू की। लिवि का जन्म पाडुआ में हुआ था। उसके बाद रोम आये, भाषण कला एवं दर्शन शास्त्र के प्रति समर्पित हुए और जीवन के 46 साल उन्होंने इतिहास लिखने में बिताए। योजना एवं क्रियान्वन में 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' का फलक काफी बड़ा है। लिवि ने रोम का इतिहास नगर की स्थापना से लेकर अपने समय (753 ई.पू. से नौंवी ईस्वी) तक दर्ज किया है। लिवि ने जो लिखा वो रोम नगर और ज्यादा से ज्यादा इटली तक का इतिहास था। सामाजिक और गृहयुद्ध उसके मुख्य विषय हैं। रोम के संविधान, वित्तीय प्रश्नों और आर्थिक स्थितियों का बस संक्षिप्त हवाला दिया गया है। रोमन साहित्य का कोई वर्णन नहीं है। स्त्रोत के तौर पर लिवि को सभी पूर्ववर्ती रोमन इतिहासकार उपलब्ध रहे थे। उस समय अभिलेख तो थे नहीं सिर्फ किवदंतियां थीं जिन्हें इतिहास से अलग करना मुश्किल था। लिवि इस मुश्किल से बार-बार छुटकारा पाना चाहता है और लिखता है, "मैं न पुष्टि करता हूँ न खंडन; मैं हिचकिचाता हूँ .....; और यह जाँचने का श्रम फलप्रद नहीं होगा।"[13] धर्म के प्रति उनकी आस्था एवं सम्मान इतना गहरा है कि यह कोई भी अन्धविश्वास मान लेता है और अपने पन्नों को अपशगुनों, भावी संकेतों और भविष्यवाणियों से भर देता है। यह कोई आलोचनाशील और वैज्ञानिक अध्येता नहीं है कि वह व्यवस्थित तरीके से सामग्री की जाँच व विश्लेषण करें। लिवि का इतिहास ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और घटनाओं का जोशीला साहित्यिक मंजर है। पद्धति एवं तरीके की इन कमियों में उसके देशभक्तिपूर्ण और उच्चवर्गीय पूर्वग्रह जुड़े हुए हैं जो अक्सर कथा को रोम और उसके कुलीनों के पक्ष में तोड़-मरोड़ देते हैं।

टैसिटस : (55-120 ई.पू.):

इतिहास-ग्रंथ, भाषण, पत्र, राजाज्ञाएं, सीनेट के अधिनियम और प्राचीन परिवारों की परम्पराएं टैसिटस के प्रमुख स्त्रोत थे। "वह अक्सर उन्हें उद्धृत करता है और कभी-कभी उनका आलोचनात्मक परीक्षण भी करता है। धर्म व आस्था के प्रश्नों पर वह सावधानीपूर्वक दोहरा रूख रखता है और अक्सर ज्योंतिषियों, दैवीय संकेतों, शकुनों एवं चमत्कारों को अस्वीकार करता है। परन्तु टैसिटस के बताने का ढ़ंग ऐतिहासिक पुष्टि के प्रतिकूल है। रोमन दरबार के वक्ताओं की तरह उसकी पद्धति आख्यान को अक्सर सीधा भाषण बना देती है। इस प्रकार टैसिटस के लिखे हुए इतिहास को सावधानीपूर्वक पढ़ना चाहिए।"[14] टैसिटस के कार्य में संकीर्णता और पक्षपात झलकता है। कोलिंगवुड का निष्कर्ष है, "ऐतिहासिक साहित्य के योगदान के मामले में टैसिटस व्यक्तित्व विशाल है लेकिन वह इतिहासकार है या नहीं इस जिज्ञासा की अनुमति मिलनी चाहिए।"[15] वह आगे कहता है कि, "लिवि और टैसिटस रोमन इतिहास चिंतन के बंजरपन के आजू-बाजू खड़े दो महान स्मारक हैं।"[16]

ग. चीनी इतिहास लेखन :

"भारतीय सभ्यता के विपरीत चीनी सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व इतिहास में उसकी दिलचस्पी है। चीन को 'इतिहासकारों का स्वर्ग' कहा जाता है।"[17] अपनी अवधि आंतरिक सुसंगता, प्रतिष्ठा और साहित्यिक उत्पादकता में चीनी ऐतिहासिक परम्परा अटूट है। चीनी मानसिकता इतिहास के अनुकूल बनाने में परिस्थितियों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। चीन में पुरानी बातों को दर्ज करने को बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता था इसलिए इसके लिए दरबार में बहुत से अधिकारी होते थे जो चाहे मंदिर हों या राजकुलों की घटनाएँ सभी दर्ज करते थे। स्जूमा चियन के पश्चात इतिहास लेखन की विशेषज्ञ भूमि को चीनी प्रशासनिक सेवा के हिस्से के रूप में मान लिया गया। आरंभिक सांतवीं सदी में

तुंग राजवंश के काल से सरकार के एक भाग के रूप में इतिहास कार्यालय उभरकर आया और धीरे-धीरे एक नया विषय बना।

कनफ्यूशियस (531- 478 B.C.):

चीनी लोग अपना इतिहास 3000 ई.पू. तक पुराना होने का दावा करते हैं लेकिन 776 ई.पू. की घटनाएं प्रमाणिक नहीं मानी जा सकती। अपने भूतकाल और पूर्वजों के लिए सम्मान एवं श्रद्धा बढ़ाने के लिए कनफ्यूशियस ने इतिहास के महत्त्व पर जोर डालना शुरू किया। कनफ्यूशियस की नज़रों में 100 साल तक महान शासकों ने चीन पर शासन किया। लेकिन फिर भी उन्हें ऐसा इतिहासकार नहीं माना जा सकता है जो प्रमाणित सामग्री को अपने लेखन कार्य में प्रयोग करता हो क्योंकि उसने नैतिकता व बुद्धिमता को बढ़ावा देने के लिए अपने लेखन में कुछ कहानियों को जोड़ दिया है जिससे इतिहास लेखन की प्रमाणिकता अधूरी सी रह जाती है। "वह जनश्रुति और इतिहास से जान-बूझकर चुनी हुई कहानियों के जरिये अपने शिष्यों को प्रेरित करने के लिए देश के अतीत का आदर्श चित्र प्रस्तुत करने वाला शिक्षक बना।"[18]

चीन की तरह किसी अन्य देश में अतीत का इतना विशाल, निरंतर, तथ्यपरक ब्यौरा नहीं मिलता है। इसमें शाही इतिहास, स्थानीय और राजवंशों के इतिहास, गजट, चीन पर निर्भर राज्यों के वृत्तांत, चीन में रह रहे गैर चीनी लोगों का इतिहास, विदेशों के साथ संबंधों के इतिहास को शामिल किया गया है। लेकिन इन सब के पश्चात रैंक ने यह कहकर चीन को इतिहास के दायरे से बहिष्कृत कर दिया कि चीनी स्त्रोत मिथकीय अप्रामाणिक व द्वितीयक और चीनी भाषा न जानने वाले के लिए अनुपलब्ध हैं। चीनी लेखक जानकारी की व्याख्या सामान्यीकरण की पृष्ठभूमि का वर्णन की परख नहीं रखते थे। इन सभी के पश्चात हम यह नहीं कह सकते हैं कि चीनी इतिहासकार ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और कारणों के प्रभाव से हमेशा आँख चुराए रखते थे।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन :

प्राचीन भारतीयों के बौद्धिक जीवन की सबसे बड़ी त्रुटी यह थी कि उनकी सभ्यता का सुदीर्घ इतिहास और विकसित चरित्र होने के बाद भी उसमें इतिहास-बोध और विभिन्न घटनाओं को कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित करने की प्रवृत्ति का लगभग पूर्णतः अभाव रहा। इस तथ्य को ही ध्यान में रखते हुए ऐ.बी. कीथ लिखते हैं, "...इसका साहित्य पर्याप्त परिणाम में उपलब्ध होने के बाद भी इतिहास का निरूपण इतना सोचनीय है.....कि संस्कृत साहित्य के सम्पूर्ण महान काल में एक भी ऐसा लेखक नहीं है जिसे गंभीरता के साथ आलोचनात्मक इतिहासकार के रूप में मान्यता दी जा सके।"[19]

प्राचीन भारतीयों में इतिहास-बोध और कालक्रमानुसार ऐतिहासिक घटनाओं को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति न होने के क्या कारण हैं? विसेंट स्मिथ के अनुसार, "अधिकाँश संस्कृत कृतियों की रचना ब्राह्मणों ने की थी जिनके भीतर इतिहास लिखने के प्रति कोई रूचि नहीं थी और उनकी रूचि अन्य कार्यों में थी।"[20] परन्तु यह वक्तव्य केवल साध्य को ही सिद्ध मान लेता है। क्योंकि जो विचारणीय समस्या है वह ही इस तथ्य का कारण भी है कि क्यों प्राचीन हिंदी मस्तिष्क विचलित होकर उन बातों में उलझा रहा जो इतिहास लेखन की दृष्टि से सहायक नहीं थी। ए.बी.कीथ ने यह विचार प्रकट किया कि, "इस प्रघटना का कारण निश्चित तौर पर भारतीय मनोविज्ञान की विशिष्टताओं में निहित रहा होगा और इसमें पर्यावरण तथा घटनाक्रम ने भी सहयोगी भूमिका निभाई होगी।"[21] पर वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इसकी पूरी तरह संतोषजनक व्याख्या कर पाना कठिन है।

व्यापक इतिहास बोध का तुलनात्मक रूप से अभाव और कालक्रम व्याख्या की चेतना का अभाव परस्पर गहराई से सम्बद्ध हैं। कालक्रम व्यवस्था की चेतना का अभाव के कारण प्राचीन इतिहास की घटनाओं की तिथियों का सही निर्धारण कहीं हो जाता है। यदि घटनाओं का ज्ञान सटीक भी हो तो उनके घटित होने के समय से सम्बंधित ज्ञान न होने की स्थिति में उन्हें ऐतिहासिक नहीं माना जा सकता

है। प्राचीन भारत के इतिहास में निर्धारण के लिए प्रमाणिक आधार की खोज समस्या बनी रहती है। "कालक्रम निर्धारण सम्बन्धी यह समस्या दो प्रकार की होती है। पहली कठिनाई घटनाओं की तिथियों के अभाव के कारण है जबकि दूसरे प्रकार की कठिनाई के मूल में यह तथ्य है कि जब तिथि की जानकारी उपलब्ध भी होती है तो इसे ईसाई या हिज्री संवत जैसे सार्वत्रिक प्रयोग वाले किसी संवतों के अनुसार परिवर्तित करना कठिन है। यह कठिनाई विक्रम, शक, गुप्त आदि जैसे उपमहाद्वीपों के इतिहास के अनेक संवतों तथा असंख्य तिथियों के संदर्भ में दिखाई देती है।"[22] जहाँ किसी राजा के शासनकाल के दौरान या बुद्ध जैसे किसी उपदेशक के जन्म अथवा मृत्यु के बाद की किसी घटना का उल्लेख भी हुआ है; वहां भी उस घटना के घटित होने की सही तिथि को लेकर समय के अथाह सागर में हम इधर-उधर भटकते रह जाते हैं। इसका एक बड़ा उदाहरण अशोक का यह वक्तव्य है कि उसने अपने शासनकाल के आठवें वर्ष में कलिंग पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की। इस तथ्य की स्पष्टता असंदिग्ध है पर यह उसके राज्याभिषेक अथवा कलिंग युद्ध की तिथि के सम्बन्ध में हमारे संदेह का निवारण नहीं कर पाता है। कालक्रम व्यवस्था के निर्धारण की समस्या जैसा प्राचीन भारत के इतिहास के संदर्भ में हमें इसे हिंदू अवधारणा से जोड़कर समझना चाहिए जिसे सामान्यतः विभिन्न क्रियाओं के क्रम के रूप में प्रतिपादित किया गया है-

- पर्यावरण या परिवेश और घटनाक्रम
- कर्म और पुनर्जन्म तथा नियति में विश्वास
- प्रगति की असम्भाव्यता: प्रतिगामिता में विश्वास
- विशिष्ट की अपेक्षा सामान्य पक्षों को प्राथमिकता
- जीवन को नकारने का दर्शन

- युक्तिपरकता या तार्किकता का परित्याग

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा का आरम्भ :

अतीत से लगाव मनुष्य का जन्मजात गुण होता है और प्राचीन भारत के लोगों में अतीत के प्रति एक जीवंत चेतना थी। इतिहास की एक वाचिक या मौखिक परम्परा, जैसा कि गाथा और नराशंसी के रूप में दिखता है, ऋग्वैदिक काल में भी एक अस्पष्ट और अव्यवस्थित रूप में अस्तित्व में थी। उत्तर वैदिक कल और उसके बाद अर्ध-ऐतिहासिक रचनाओं के आख्यान, इतिवृत्त, वंश और वंशानुचरित पुराण और इतिहास जैसे अन्य रूपों का जन्म हुआ। कभी-कभी गाथा और नराशंसी को परस्पर संयोजित करके आख्यान में समाविष्ट कर दिया जाता था जिसका सरल अर्थ ब्राह्मण साहित्य में उल्लेखित है। उत्तर वैदिक काल में राजकीय अधिकारियों का एक वर्ग था। सूतों को मगध भी बोला जाता था। वंश अर्थात राजाओं और पुरोहितों की वंशावलियों की रचना और संकलन करना था। 400 B.C. से 400 A.D. के मध्य इतिहास और अनुश्रुति या दंतकथा की इस वाचिक परम्परा को एक निश्चित साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया गया। सूतों और मगधों की एक अलग वर्ग के रूप में पहचान समाप्त हो गई क्योंकि राजकीय अभिलेखागारों के रूप में एक संस्था की स्थापना के फलस्वरूप उनका कोई काम नहीं रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम मौर्यकाल से इस संस्था ने कार्य करना आरम्भ कर दिया था। अर्थशास्त्र में इन अभिलेखागारों के अंदर सुरक्षित अभिलेखों तथा तथात्मक विवरणों की सूची दी गई है।

"विषयवस्तु, प्रस्तुति की पद्धति और निष्कर्षों की दृष्टि से प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन एक निश्चित प्रतिमान का अनुसरण करता था। इस प्रतिमान के संदर्भ में कालक्रम या तिथिक्रम तथ्यों की अभिव्यक्ति और उनकी व्याख्या जैसी इतिहास लेखन सम्बन्धी समस्याओं का अधिक महत्त्व नहीं था, कल्हण इसके एकमात्र अपवाद थे।"[23]

मध्यकालीन इतिहास लेखन :

ईसाईयों की तरह मुसलामानों में भी प्राचीन हिन्दुओं की तुलना में अधिक तीक्ष्ण इतिहास बोध और अधिक सटीक ढ़ंग से अतीत को कालक्रमानुसार व्यवस्थित करने की चेतना थी। इतिहास के प्रति मुसलमानों के लगाव को अरब, तुर्क और फारसी स्त्रोत द्वारा बल मिला। भारत में मध्यकालीन ऐतिहासिक साहित्य स्वरूप, विषय और मूलभाव की दृष्टि से मुस्लिम संसार में अन्यत्र किसी स्थान के ऐतिहासिक लेखन से भिन्न नहीं था। इस्लाम के आगमन ने भारतीय ऐतिहासिक कृतियों की बहुत बड़ी संख्या में रचनाओं को सुगम बना दिया। ये कृतियाँ दरबारियों या राजकीय अधिकारियों द्वारा अपने शासकों के आदेश से अथवा उनका संरक्षण पाने की आशा में लिखी गई। इस्लामी संसार के सामान्य या सार्वभौम इतिहास लिखने का रिवाज नौ ंवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों के मध्य प्रचलित हुआ। इस तरह के सामान्य इतिहास हजरत मुहम्मद के जीवन पर केन्द्रित थे, जिस प्रकार मध्यकालीन ईसाई इतिहास-लेख ईसा मसीह के जीवन पर केन्द्रित था। इस्लाम की दैवकृत कथा ने मानव इतिहास को अर्थ दिया।

"उत्तर भारत में तुर्क मुसलमान शासन के आरम्भ में एक ऐसी कृति सामने आई जो पीटर हार्डी के शब्दों में 'मुस्लिम इतिहास-लेख के प्रत्येक तत्व के थोड़े बहुत अंश को' इंगित करती थी।"[24] वंशावलियों की तालिकाओं का यह ग्रंथ 'शाजारा' शीर्षक के साथ इसके लेखक मुबारक शाह ने 1206 ई. में क़ुतुबद्दीन ऐबक को भेंट किया। ऐबक ने उन तालिकाओं को लिपियांतरित करके और उन पर जिल्द चढ़ाकर अपने पुस्तकालय में रखने का आदेश दिया। शाजारा अपनी प्रकृति में धार्मिक और उपदेशात्मक ग्रन्थ है। 10वीं शताब्दी में मुस्लिम इतिहास-लेख में एक शैलीगत प्रवृत्ति का विकास हुआ। यह ऐतिहासिक प्रशस्तियों में काव्य और लयबद्ध गद्य का प्रयोग था।

मुग़ल काल :

मुग़ल काल में फ़ारसी प्रभाव के अंतर्गत आधिकारिक इतिहास या नामा के रूप में इतिहास-लेख का एक नया रूप प्रचलन में आया। अकबर ने अपने नए साम्राज्य का इतिहास लिखने के लिए आधिकारियों की नियुक्ति की और उन्हें इस उद्देश्य से राज्य के अभिलेखागार में जाकर आवश्यक जानकारियाँ एकत्र करने की अनुमति दी। यह रिवाज औरंगजेब के शासनकाल तक निरंतर जारी रहा जिसने अपने ग्यारहवें शासन वर्ष में इस पर रोक लगा दी। आधिकारिक इतिहासों के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत रोचक जीवनीपरक कृतियों की भी इस काल के दौरान रचना हुई और हम पूर्ण रूप से इतिहासकारों पर निर्भर नहीं हैं।

आधुनिक इतिहास-लेखन :

ब्रिटेन की विजय और भारत के एकीकरण के आरंभिक व सकारात्मक परिणामों में से एक, जो स्वयं उस प्रक्रिया में दृष्टिगोचर हुआ, आधुनिक इतिहास लेख के परिपेक्ष्य में प्राचीन भारतीय इतिहास की पुनर्स्थापना था। मध्यकालीन इंडो-मुस्लिम इतिहासकारों की वजह से अंग्रेजों के आगमन से सात-आठ सौ वर्षों का इतिहास लिखा गया। यही वजह थी कि अंग्रेजों को मध्यकालीन भारत की अच्छी जानकारी थी। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी के लोगों को प्राचीन भारत के बारे में ऐसे विवरण नहीं मिल पाए जिन पर वो निर्भर रह सकते हों। अंग्रेजों का मानना था कि हिन्दुओं को अपने देश की संस्कृति के प्राचीन इतिहास का बहुत ही अस्पष्ट सा ज्ञान था और उसे भी वे बहुत ही अतिरंजित तरीके से प्रस्तुत करते हैं। जो किसी भी तरीके से वास्तविक ऐतिहासिक चेतना नहीं थी। जब 1800 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों को शिक्षित करने की लिए भारत में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की तो कॉलेज के एक शिक्षक और सर्वोच्च न्यायालय के एक पंडित, मृत्युंजय शर्मा ने बांग्ला में एक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा जो 1808 में प्रकाशित हुआ। दन्त कथाओं के उन राजाओं को छोड़कर जो सत्य, त्रेता और द्वापर युगों के दौरान आठ लाख वर्षों से अधिक समय तक शासन करते रहे, इस पुस्तक

में कलयुग आरम्भ होने के बाद चार हजार नौ सौ पांच वर्षों के दौरान अस्तित्व में आए विभिन्न राजवंशों का उल्लेख है। चार हजार नौ सौ सड़सठ वर्षों के दौरान दिल्ली के सिंहासन पर 119 राजा बैठे। युधिष्ठिर और महानंदी को छोड़कर इस पुस्तक में जिन राजाओं का जिक्र किया गया है वे अज्ञात हैं। उनका किसी भी कृति में कोई जिक्र नहीं है। इसलिए यह आवश्यक था कि प्राचीन इतिहास को सही ढंग से प्रस्तुत करने पर बल दिया जाए।

प्राच्यवादी इतिहास लेखन :

भारत के खोए हुए इतिहास को पुनर्निर्मित करने के इस लक्ष्य के प्रति ही प्राच्यवादी या भारतशास्त्रियों ने स्वयं को समर्पित किया। सही मायने में ऐतिहासिक ग्रंथों की अनुपस्थिति के कारण पुनर्निर्माण का कार्य लगभग पूरी तरह साहित्य से प्राप्त होने वाली जानकारी तथा अभिलेखों, सिक्कों, स्मारकों तथा मूर्तियों पर निर्भर था। आधुनिक भारतीय इतिहास-लेख ईस्ट इंडिया कम्पनी के विद्वान प्रशासनिक अधिकारियों के लेखन कार्य से शुरू हुआ। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना लगभग उसी समय हुई जब यूरोप में ऐतिहासिक पुनर्निर्माण की वैज्ञानिक भावना पैदा हुई। 17वीं शताब्दी की वैज्ञानिक क्रांति जिसने नवजागरण की भावना को जन्म दिया, के परिणामस्वरूप विभिन्न स्त्रोतों के प्रयोग में एक अत्यंत आलोचनात्मक प्रवृत्ति दिखाई दी। प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति व्यक्तिगत प्रेम और समर्पण के अतिरिक्त दो अन्य ऐसी परिस्थितियाँ थी जिसने भारत के खोये हुए अतीत को पुनः स्थापित करने की भावना को पैदा किया। इनमें से पहली परिस्थिति ये थी कि कम्पनी के अधिकारियों को अपने अधीन काम करने वाले लोगों की भाषा व संस्कृति के लिए भाषा का अच्छा ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक था। दूसरी परिस्थिति यह थी कि युवा भारतीय विद्वानों को स्वयं गवर्नर-जनरल के रूप में एक संरक्षक मिल गया था। वारेन हेस्टिंग्स ने स्वयं फ़ारसी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। उसने भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहित किया और उनके विषयों पर उनके साथ चर्चा-परिचर्चा की।

विलियम जोन्स :

प्राच्यवादी आन्दोलन का सम्बन्ध सर विलियम जोन्स से था। उन्हें अरबी भाषा का ज्ञान था, इसी ज्ञान ने उसे फारसी की तरफ आकर्षित किया। 1768 ई. तक विलियम जोन्स एक प्राच्यवादी बन चुके थे। इसी बीच कानून की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात कलकत्ता के एक सर्वोच्चय न्यायालय में न्यायधीश नियुक्त हुए। जनवरी 1784 ई. में वारेन हेस्टिंग्स की मदद से जोन्स ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। जोंस ने भारतीय विज्ञान या भारतीय विद्या में व्यवस्थित शोध की पद्धतियों का प्रयोग किया, जो उस समय यूरोप में चल रही थीं। सोसाइटी ने कठोर परिश्रम किया और काफी संस्कृत अनुवाद किए। सोसाइटी के द्वारा भगवदगीता, हितोपदंश, शकुन्तला, इन सभी का संस्कृत से अंग्रेजी में अनुवाद किया। भारतीय विद्या की खोज को ज्ञान इतिहास में सबसे प्रमुख उपलब्धियों में से एक माना जाता है। ए.ए.मैक्डोनेल लिखते हैं, "पुनर्जागरण के पश्चात से संस्कृति के इतिहास में विश्वव्यापी महत्त्व की कोई इतनी महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई जितनी महत्त्वपूर्ण घटना 18वीं शताब्दी के बाद में संस्कृत साहित्य की खोज थी।"[25] जब भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था तो ब्रिटिश प्राच्यवादी विश्व के समक्ष भारत की छवि दुनिया के एक सृजनशील समुदाय के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। विलियम जोन्स को एक मनीषी के रूप में सम्मान मिला जिन्होंने विश्व की सभ्यताओं में भारत को वह स्थान पुनः दिलवाया जिसका वह हकदार था।

प्राच्यवादियों के द्वारा किए गए शोध अनुसंधानों के परिणाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे किन्तु उनका एक बड़ा अंश कल्पना पर भी आधारित था। प्राच्यवादियों विशेषकर विलियम जोन्स ने खोज के उत्साह में प्रकाश में आए अनेक तथ्यों को रोमांटिक आंका और अतिश्योक्तिपूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुत किया। जोन्स ने संस्कृत के बारे में लिखा है कि, "ग्रीक की अपेक्षा अधिक पूर्ण लैटिन की अपेक्षा अधिक समृद्ध और इन दोनों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत।"[26]

ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास-लेखन :

भारत और ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की प्रकृति तथा चरित्र को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम लेखकों की प्रमुख धारणाओं, मनोवृत्तियों का अध्ययन करें एवं उनसे अवगत हों। प्लासी के युद्ध के पश्चात व्यापारी विजेताओं के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि इस नए विजित साम्राज्य पर शासन करने के लिए कौन-सी पद्धति अपनाई जाए। इस प्रकार तीन चिंतन धाराओं या मतों की प्रतिस्पर्धा हुई-

इनमें पहली धारा वारेन हेस्टिंग्स, विलिकंस, जोन्स जैसे प्राच्यवादियों की है जिन्होंने हिंदू सभ्यता के प्रति ऊँचे विचार रखे। उन्होंने माना कि भारतीय जीवन में परिवर्तन धीरे-धीरे और स्थानीय लोगों की पुरानी संस्थाओ के प्रति सम्मान के साथ लाने चाहिए। किन्तु नए विचारों ने भारतीयों और उनकी प्राचीन संस्थाओं के प्रति सहानुभूति को चुनौती दी। लार्ड कार्नवालिस के पश्चात जॉन शोर और चार्ल्स गांट ने 'इवैन्जेलिकल्स' दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व किया। इनके अनुसार भारतीय समाज की अवस्था में परिवर्तन लाना है तो ईसाई धर्म तथा पाश्चात्य शिक्षा का प्रयोग किया जाना चाहिए। जेम्स मिल ने 'हिस्ट्री' नामक पुस्तक लिखी। चूँकि मिल 'हिस्ट्री' लिखने से पहले ही निष्कर्षों तक पहुंच चुका था। उन्हें बस अपनी अवधारणाओं की पुष्टि के अनुसार साक्ष्य जुटाने की आवश्यकता थी। लीडेन हाल स्ट्रीट, लन्दन के ईस्ट इंडिया कार्यालय में कार्यरत मिल को भारत से सम्बंधित सभी दस्तावेज उपलब्ध थे। उसने अपने कार्य के लिए प्राच्यवादियों के प्राथमिक स्त्रोतों की भी कोई आवश्यकता महसूस नहीं हुई। विलियम जोन्स और अन्य प्राच्यवादियों ने जिन्होंने भारतीय भाषाएँ सीखीं; उनके प्रति उनके मन में द्वेष की भावना थी। जेम्स मिल ने यात्रियों के वृत्तांत और रिपोर्टों पर निर्भरता दर्शाई। हिन्दुओं की निंदा करते हुए मिल ने इतिहास की अनुसन्धान पद्धति के सभी नियमों का उल्लंघन किया। अज्ञान,

पूर्वाग्रह, स्त्रोतों की गुणवत्ता और उनकी धारणा इन सभी ने मिलकर मिल की 'हिस्ट्री' को अलग ही रूप प्रदान किया।

साम्राज्यवादी लेखक पूर्वाग्रह, पक्षपात जैसी भावनाओं से ओत-प्रोत थे। उन्हें भारतीय संस्कृति व सभ्यता में अधिक रूचि नहीं थी। आर्थिक मुद्दों पर केवल उसी समय विचार किया जाता था जब उनका स्वयं का कोई प्रयोजन सिद्ध होता हो। इस समय जिन पुस्तकों की रचना की गई वे केवल ब्रिटिश शासनकाल तक ही सीमित रहीं। भारतीय रीति-रिवाजों का संक्षिप्त वर्णन केवल विविधता को दर्शाने और उनके पतन की अवस्था को दर्शाने के लिए किया गया था।

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन :

पाश्चात्य जीवन का अंधानुसरण करने के आरंभिक चरण के पश्चात शिक्षित भारतीयों के बीच भारत को अधिक भारतीय तथा अपेक्षाकृत कम अंग्रेज बनाने का जोश उत्पन्न होने लगा। यह वर्ग नहीं चाहता था कि पाश्चात्य सभ्यता उनकी सभ्यता और संस्कृति को समाप्त कर दे। यह वर्ग अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति को जीवित रखना चाहता था। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने दृढ़ता से कहा कि एकता का भाव राष्ट्रीय गौरव तथा मुक्ति की इच्छा उत्पन्न करने के एक साधन के रूप में इतिहास के अध्ययन तथा लेखन से अधिक मौलिक और कुछ नहीं था। आधुनिक भारतीय इतिहासकारों के पहले वर्ग को जिस कार्य को करना था वह था साम्राज्यवादी हमले से अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना। साम्राज्यवादी हमले का मुख्य मकसद था भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन तथा हिंदू धर्म को कम करके आंकने की एक पद्धति तथा भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के कमजोर पक्षों को चुन-चुनकर प्रस्तुत करना। जिसमें हिंदू जाति-प्रथा की उचित ढ़ंग से आलोचना की गई वहीं 'श्वेत' द्वारा 'अश्वेतों' को दास बनाए जाने, उनकी भू-दासता तथा उनके साथ दुर्व्यवहार की चुपचाप उपेक्षा की गई।

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन जो आंशिक रूप से भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास लेखकों के पक्षपात और पूर्वाग्रहों के विरुद्ध एक प्रक्रिया के रूप में उभरकर सामने आया। राष्ट्रीय इतिहास लेखन का मुख्य उद्देश्य अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का पुनरोद्धार व साम्राज्यवादी इतिहास लेखकों के प्रहार से बचाना था। ऐसा करते हुए यदा कदा कभी गलतियां भी हुई क्योंकि इसमें अपनी संस्कृति का महिमामंडन करके और उसे अतिरंजित तरीके से पेश किया गया था। जैसे-जैसे स्वतंत्रता आन्दोलन तेज होता चला गया राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने, "स्वतंत्रता के लिए संघर्ष में उत्साह का संचार करने के क्रम में भारतीय इतिहास की एक सजग पुनर्प्रस्तुति दी।"[27]

भारतीय जीवन व संस्कृति के विरुद्ध यूरोप द्वारा लगाए गए आरोपों से जूझते हुए राष्ट्रीय अस्मिता की खोज में उत्सुकता और व्याग्रता से लग भारतीय राष्ट्रीय इतिहास लेख में यदाकदा ऐतिहासिक सुसंगतता का पूर्णत: अभाव दिखाई दिया। यह सुसंगतता का अभाव फिर किसी भी रूप में हो सकता है। इनके द्वारा लिखे गए इतिहास में वस्तुपरकता का दोष था जो इतिहास का मूल तत्व है। राष्ट्रवाद से अंधदेशभक्ति तक का फासला केवल एक कदम का होता है। जहाँ अगर साम्राज्यवादी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सबकुछ बुरा देख रहे थे वहीं पर राष्ट्रवादी सबकुछ अच्छा देखने के लिए आमदा थे। भावना, आवेग और व्याग्रता, बुद्धि और विवेक पर स्थापित हो गई। भारत के अतीत में गहन विश्वास के कारण इतिहासकारों के तर्क यदा कदा हास्यास्पद होने की सीमा तक पहुँच जाते थे।

इसके साथ ही राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के सकारात्मक पक्ष भी थे। भारत में ऐतिहासिक अध्ययन को सबसे बड़ी प्रेरणा राष्ट्रवाद की भावना से ही मिली है। साम्राज्यवादी चुनौती का सामना करने के लिए भारतीय विद्वानों ने स्वयं को इतिहास के स्त्रोतों के गहन अध्ययन में डुबो दिया। उनके द्वारा किए गए शोध अनुसंधानों ने भारत के प्राचीन अतीत के अनेक पक्षों को उद्घाटित किया।

मार्क्सवादी चरण :

स्वतंत्रता के बाद भारत में इस प्रकार का एक इतिहास लेखन विकसित हुआ जिसकी जड़े राष्ट्रवादी इतिहास लेखन से जुड़ी हुई थी। मार्क्सवादी कुछ लेखकों ने इतिहास और विशेषकर प्राचीन इतिहास के बारे में यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि इसका अध्ययन समाज विज्ञान विषय के रूप में कर सकते हैं। उनकी व्याख्या कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक दर्शन और मुख्य रूप से द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर टिकी थी। भारतीय इतिहास लेखन की मार्क्सवादी धारा के सबसे प्रमुख व्यक्तित्व दामोदर धर्मानंद कौशाम्बी थे।

सबाल्टर्न इतिहास लेखन :

इसकी शुरुआत रणजीत गुहा के द्वारा की जाती है। इनके द्वारा प्रकाशित सबाल्टर्न स्टडीज के नाम से पुस्तक श्रृंखला के प्रथम खंड में वे अपना विरोध जताते हुए लिखते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास लेखन दो प्रकार से पक्षपात से ग्रसित है। वे बताते हैं कि ऐसा माना जाता है कि भारतीय राष्ट्र का निर्माण अभिजात्य या उच्च वर्ग के द्वारा किया गया था। उनका मानना है कि अभिजात्य वर्ग के साथ-साथ सामान्यजन भी राजनीति का एक मुख्य हिस्सा थे। अधीनस्थ वर्गों और समूहों के कार्यकर्ताओं ने भी आजादी दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनका मानना है कि अभिजात्य वर्ग इस बात को नहीं मानता तो उनका प्रतिवाद होना चाहिए और इसके लिए राजनीति के सबाल्टर्न प्रभाव क्षेत्रों की पहचान पर आधारित एक वैकल्पिक विमर्श प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यही सबाल्टर्न इतिहास लेखन का मूल है। सबाल्टर्न का अर्थ है निम्न श्रेणी का चाहे वह वर्ग, जाति, लिंग व पद के आधार पर ही क्यों न हो। सबाल्टर्न स्टडीज वह है जो इतिहास के सन्दर्भ में अब तक उपेक्षित रहे हैं।

2.2. हिंदी साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियाँ :

विधेयवादी पद्धति :

विधेयवाद एक ऐसी दृष्टि है जिसमें तार्किक और गणितीय पद्धति तथा एन्द्रिक अनुभवों को आधिकारिक ज्ञान के अनन्य स्त्रोत के रूप में देखा जाता है। अर्थात प्रत्यक्ष अनुभवों से प्राप्त ज्ञान को ही एकमात्र विश्वसनीय मानना विधेयवाद है। इसे प्रत्यक्षवाद भी कहा जाता है। इतिहास लेखन के अंतर्गत विधेयवाद का जनक फ्रांसीसी गणितज्ञ और दार्शनिक अगस्त काम्टे को माना जाता है। विधेयवाद के अंतर्गत अगस्त काम्टे ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया कि हर प्रामाणिक ज्ञान वास्तविक प्रमाणों पर आधारित होता है और प्रत्येक प्रामाणिक ज्ञान में यह दावा किया जाता है कि अंतिम रूप में स्वीकृत ज्ञान विज्ञान ही होता है। काम्टे ने विधेयवाद की व्याख्या सर्वप्रथम 1830 ई. से 1842 ई. के बीच प्रकाशित उनकी पुस्तक 'द कोर्स इन पोजिटिव फिलोस्फी' में की। बाद में इनके विचारों का विस्तार इनकी पुस्तक 'ए जेनेरल व्यू ऑफ़ पोजिटिविज्म' में देखने को मिला। इन पुस्तकों में विधेयवादी पद्धति का विस्तार हमें मिलता है।

इतिहास लेखन में विधेयवाद की आवश्यकता पर जहाँ अगस्त काम्टे विचार करते दिखाई देते हैं वहीं साहित्य इतिहास-दर्शन में विधेयवाद की आवश्यकता पर इपालित अडोल्फ़ तेन के विचार महत्त्वपूर्ण हैं। साहित्य के इतिहास-दर्शन में तेन का बहुत बड़ा योगदान है। उनका विशेष महत्त्व कला तथा साहित्य के अध्ययन तथा विश्लेषण के लिए बताई गई पद्धति के कारण है। तेन के अनुसार कला सृजन के निर्णायक तीन तत्त्व हैं- जाति, वातावरण और क्षण। उन्होंने साहित्य इतिहास लेखन में यह बताने का प्रयास किया कि इतिहास को समझने की धारणा उससे सम्बंधित सामाजिक जीवन, परम्परा, वातावरण तथा सामाजिक परिस्थितियों से अनुशासित होती है। उनका जाति से तात्पर्य सामाजिक जीवन, उनकी जीवन-चर्या, परम्परा एवं जीवन मूल्यों के साथ-साथ वंशानुगत विशेषताओं, मानसिक बनावट व

शारीरिक संरचना से है। उन्होंने अपने एक निबंध में इस संदर्भ में लिखा कि 'किसी प्रजाति की चरित्रगत विशेषताएँ जलवायु, मिट्टी और इतिहास की महान घटनाओं की उपज होती हैं। चरित्र की बुनयादी विशेषताएं प्रजाति की विशिष्ट चेतना और सौन्दर्यानुभूति में प्रकट होती हैं। प्रजाति चरित्र के अनुसार ही सौंदर्य के आदर्शों का विकास होता है।' कला सृजन के दूसरे तत्व वातावरण से तेन का आशय प्राकृतिक परिवेश से है। उन्होंने वातावरण को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आंदोलनों के माध्यम से परिभाषित किया है। वे मानते हैं कि साहित्य सृजन में वातावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। उन्होंने प्रकृति के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है कि आम एवं बबूल के पेड़ों को उगने के लिए अलग-अलग वातावरण की आवश्यकता होती है। जैसा वातावरण आम के पेड़ को उगने के लिए चाहिए वैसे वातावरण में बबूल नहीं उग सकता। उनके विकास में एक क्रम तथा एक व्यवस्था होती है। मिट्टी तथा तापमान में भी बदलाव होता है। क्षण से उनका अभिप्राय युग विशेष के एक निश्चित एवं सीमित कालखंड से है।

19वीं शताब्दी में विधेयवाद का साहित्य इतिहास लेखन में प्रणाली के रूप में यूरोप में खूब प्रचार हुआ। हिंदी में माना जाता है कि इस प्रणाली का सर्वप्रथम उपयोग जार्ज ग्रियर्सन ने किया। इस विषय में नलिन विलोचन शर्मा लिखते हैं, "वस्तुतः इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हिंदी के विधेयवादी साहित्येतिहास के आद्य प्रवर्त्तक शुक्लजी नहीं, प्रत्युत ग्रियर्सन हैं।"[28] साहित्येतिहास को प्रवृत्तियों के आधार पर युगों में बांटना, तुलसीदास के काव्य-कौशल को शुक्लजी की तरह ही विशेष अध्याय बनाकर जगह देना, प्राचीन कवियों के विवरणों के अतिरिक्त साहित्यिक शैली में सूक्ष्म दृष्टि से उनका महत्त्व-निर्धारण करना ग्रियर्सन को विधेयवाद का हिंदी में प्रवर्तक बनाता है।

ग्रियर्सन की इस प्रणाली को अधिक व्यवस्थित करके आचार्य शुक्ल ने व्यापक रूप से अपने साहित्येतिहास लेखन के लिए विधेयवादी पद्धति का प्रयोग किया। विधेयवादी प्रणाली में इतिहासकार

तेन के कला सृजन के तत्त्व जाति, वातावरण तथा क्षण के अनुसार पहले साहित्य सम्बन्धी आंकड़े इकट्ठे करता है फिर तत्कालीन सामाजिक जीवन तथा वातावरण का अध्ययन करता है तथा अंत में युग विशेष को आधार बनाकर नए मूल्यों की स्थापना कर देता है। अगर हम आचार्य शुक्ल की परिभाषा पर ही गौर करें जो साहित्य के इतिहास में लिखते हैं, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चलता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"[29] इस परिभाषा में स्पष्ट है कि शुक्ल जी ने जाति के लिए यहाँ जनता का प्रयोग किया है। वातावरण के लिए एक निश्चित स्थान का उपयोग हुआ है। वातावरण तथा परिवेश में बदलाव से साहित्य के स्वरूप में भी बदलाव आ जाता है जो शुक्लजी ने परिभाषा में स्पष्ट किया है। विधेयवाद सामाजिकता पर विशेष जोर देता है। इस पद्धति में प्रत्यक्ष तथा यथार्थपरक अभिव्यक्ति पर ज्यादा जोर दिया गया है जिसके कारण यहाँ कल्पना तथा स्वछंदता के लिए कोई स्थान नहीं है। छायावाद को लेकर आचार्य शुक्ल के विचारों से यह कहीं न कहीं स्पष्ट भी हो जाता है।

विधेयवादी पद्धति विज्ञान अपितु भौतिक विज्ञान की पद्धति है। अगस्त काम्टे का मानना था कि इसी वैज्ञानिक चिंतन को विज्ञान तथा समाज दोनों पर लागू किया जा सकता है। उनके अनुसार मानव प्रकृति हर जगह एक जैसी है। इसलिए उनके इस विकास के नियम को सभी समाजों पर लागू करना संभव है। इन्हीं के प्रभाव में आकर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में एक आलोचक ने कहा था, 'इतिहास विज्ञान है न कम न अधिक।' ऐसी धारणाओं से तत्कालीन बहुत सारे लोगों ने माना कि धर्म का युग समाप्त हो चुका है और विज्ञान तथा उद्योग का युग आ गया था। जब साहित्य सृजन, इतिहास विवेचन, साहित्यालोचन एवं इतिहास दृष्टि से विधेयवादी पद्धति का मूल्यांकन करते हैं तो हमें लगेगा उन सभी में इस वैज्ञानिक

प्रणाली का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में प्रयोग हुआ है। विधेयवाद सृजन तथा विवेचन का अत्यंत सुविधापूर्ण मार्ग है जिसपर चलना सरल एवं सहज है। इसी कारण इस प्रणाली को प्रारंभ में यूरोपीय देशों में बहुत सम्मान मिला।

विधेयवाद ने यह माना कि ज्ञान को निरीक्षण के जरिये पैदा किया जा सकता है। इस दर्शन का व्यक्तिवादी तथ्यों से कोई सरोकार नहीं है। इसके उलट वे सामान्य नियमों में विश्वास रखते हैं। इन नियमों को आगमन पद्धति के द्वारा तैयार किया जा सकता है अर्थात पहले निरीक्षण तथा अनुभूति के माध्यम से तथ्यों को स्थापित करना और उनके बीच समानता के जरिये नियमों का निर्माण करना। इसलिए विधेयावादियों के लिए सामान्य नियम एन्द्रिक अनुभूति से प्राप्त तथ्यों का समूह मात्र है। इन सभी नियमों का इस्तेमाल समाज के विकास में सुधार करने के लिए तथा इनके बारे में पूर्वानुमान लगाने के लिए किया जाता है। हालांकि इसमें कमियाँ भी हैं। इसमें छोटी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित होने की वजह से कई समस्याएँ रह भी गई हैं। एक ही युगीन परिस्थितियों में विधेयावादी प्रणाली का उपयोग करते हुए एक ही युग की विभिन्न अंतर्धारा पर गहराई से विचार नहीं हो पाया जैसे एक ही युग में साहित्य की अनेक प्रवृत्तियां हो सकती हैं जो सहायक भी हो सकती हैं और विरोधी भी। तुलसी, कबीर और केशव एक दूसरे के समकालीन हैं किन्तु उनके काव्य का स्वर अलग है। किसी भी साहित्यिक प्रवृत्ति के पीछे एक दीर्घकालीन परम्परा होती है या यूँ कहें कोई भी प्रवृत्ति एक दम ही जन्म नहीं लेती, उसे एक पर्याप्त समय लगता है। इसी दृष्टि के अभाव में युगों की प्रवृत्तियों, कालखंड सम्बन्धी अनेक अन्तर्विरोध पैदा हो गए जो आचार्य शुक्ल के इतिहास में देखे जा सकते हैं।

वर्णानुक्रम पद्धति :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रथम प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी द्वारा 'इस्तावार द ला लितरेत्यूर एंदुई ए हिन्दुस्तानी' नामक पुस्तक में फ्रेंच भाषा में किया। पहली बार किसी लेखक द्वारा

हिंदी के रचनाकारों का वर्णन इस तरह किया गया था। उन्होंने हिंदी के साथ-साथ उर्दू के भी कई कवियों तथा लेखकों की जीवनियों, पुस्तकों का विवरण और उद्धरण संग्रहीत किया। बशर्ते उनका इतिहास लेखन साहित्येतिहास लेखन की सभी शर्तों को पूरा नहीं करता फिर भी हिंदी साहित्य का विवरण संकलित करना तथा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों को ग्रंथगारों से निकालकर उनका विवरण देना ही बहुत महत्त्वपूर्ण है। तासी ने अपने इतिहास लेखन में वर्णानुक्रम पद्धति का इस्तेमाल किया जिसमें साहित्यकारों का विवरण उनके नाम के प्रथम अक्षर के हिसाब से दिया। इस तरह की पद्धति शब्दकोश में होती है। तासी के महत्त्व को दर्शाते हुए लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं, "फ्रांसीसी लेखक गार्सा द तासी कृत फ्रेंच भाषा में लिखित 'इस्तवार द ला लितरेत्यूर एन्दुई ऐ हिन्दुस्तानी' का अपना विशेष स्थान है, क्योंकि हिंदी साहित्य की दीर्घकालीन गाथा को सूत्रबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का यह प्रथम प्रयास था। जिस वृत्त संग्रह शैली के अंतर्गत शिवसिंह सेंगर और ग्रियर्सन ने अपने ग्रंथों का निर्माण किया उसका जन्म तासी के ग्रन्थ से ही होता है। वास्तव में जितनी विस्तृत सूचनाएं तासी के ग्रन्थ में उपलब्ध होती हैं वे अन्य दो ग्रंथों में प्राप्त नहीं होती, इस दृष्टि से भी इस ग्रंथ का महत्त्व है। यद्यपि तासी ने कवियों और उनकी रचनाओं को अवच्छिन्न जीवन की विविध परिस्थितियों के बीच रखकर आलोचनात्मक दृष्टि से परखने का प्रयास नहीं किया, और न काल विभाजन का क्रम ही ग्रहण किया तो भी उनके ग्रंथ का मूल्य किसी प्रकार भी कम नहीं हो जाता।"[30]

नलिन विलोचन शर्मा तासी की वर्णानुक्रम पद्धति के बारे में लिखते हैं, "तासी का कविवृत्त काल-क्रमानुसारी न होकर वर्णक्रमानुसारी है और लेखक ने साहित्यिक प्रवृत्तियों आदि का निरूपण नहीं किया है। यदपि जैसा कि उनकी भूमिका से ज्ञात होता है, वे इस क्रम से अपरिचित नहीं थे और कुछ व्यावहारिक कठिनाईयों के कारण ही वे ऐसा करने में असमर्थ रहे।"[31] इस प्रणाली को वर्णमाला प्रणाली भी कहते हैं। आरम्भ में किसी भी इतिहास लेखन में इसी प्रणाली का इस्तेमाल किया जाता था। इस

प्रणाली में कोई भूमिका, विषयसूची तथा पृष्ठभूमि नहीं होती परन्तु वर्णमाला के अक्षरों के क्रम से एक क्रम बना लिया जाता है और साहित्यकारों के नाम उसी आधार से उस क्रम में लगाए जाते हैं। जैसे क अक्षर वर्णमाला में पहले आता है तो क अक्षर से शुरू नाम वाले कवियों कबीर, केशवदास, कुम्भन दास कवि, कृष्णदास आदि को क्रम से लगाया जाता है, भले ही कालक्रम की दृष्टि से उनका युग (आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल) अलग हो किन्तु उनका विवेचन एक साथ करना होगा। इसमें समय की उपेक्षा होती इसलिए तुलसीदास और सूरदास से पूर्व बिहारी का उल्लेख होता है। हिंदी में इस पद्धति का प्रयोग तासी तथा शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास लेखन में किया है। तासी अपने इतिहास के आरम्भ में यह बात स्वीकार भी करते हैं कि प्रामाणिक सामग्री के अभाव में उन्होंने विवश होकर इस पद्धति को अपनाया, "मैंने यही पद्धति ग्रहण की है, यदपि शुरू में मेरा विचार कालक्रम ग्रहण करने का था और मैं ये बात छिपाना नहीं चाहता कि यह कम अधिक अच्छा रहता या कम से कम जो शीर्षक मैंने अपने ग्रंथ को दिया है, उससे अधिक उपयुक्त होता, किन्तु मेरे पास अपूर्ण सूचनाएं होने के कारण उसे ग्रहण करना कठिन ही था.....जहाँ तक हिन्दुई लेखकों से सम्बन्ध है, उनकी भी अधिकांश रचनाओं की निर्माण तिथियाँ निश्चित नहीं हैं।"[32] वास्तव में यह प्रणाली स्थूल प्रणाली है जिसमें काल प्रवाह का बोध नहीं हो पाता। इस प्रणाली के आधार पर रचे गए इतिहास इतिहास कम साहित्यकार के कोष मात्र बन जाते हैं। इसीलिए इस प्रणाली को कोषग्रंथों के लिए सबसे उपयुक्त माना गया है। इस तरह के ग्रंथों में युगीन प्रवृत्तियों तथा साहित्यिक विशेषताओं आदि का पता नहीं लग पाता। कई बार रचनाकारों के नाम को लेकर भी काफी असुविधा होती है जो तासी तथा 'सरोज' में देखने को मिलता है। इन्हीं सारी असुविधाओं के मद्देनजर इस प्रणाली को दोषपूर्ण एवं अत्यंत प्राचीन पद्धति कहा गया है।

कालानुक्रम पद्धति :

हिंदी साहित्येतिहास लेखन परम्परा में इस पद्धति का सबसे पहले प्रयोग जार्ज ग्रियर्सन ने किया था। इनके बाद मिश्रबंधु ने इस पद्धति को अपनाया। किसी भी वस्तु, व्यक्ति, समाज या साहित्य आदि का इतिहास लिखने के लिए सबसे पहले उसका काल-क्रमानुसार विवेचन आवश्यक होता है जो हमें इस पद्धति में देखने को मिलता है । इस पद्धति में सबसे पहले कवियों एवं लेखकों का वर्णन या विश्लेषण कालक्रमानुसार करने का प्रयास हुआ है। सबसे पहले कवियों तथा लेखकों की समस्त सूची जिसमें जन्म, मृत्यु, रचनाकाल आदि को इकठ्ठा किया जाता है तथा आरम्भ से लेकर वर्तमान तक कालखंडों में उनको उनकी प्रवृत्तियों के आधार पर स्थान दिया जाता है। नलिन विलोचन शर्मा का तर्क है कि जब तक कवियों की सूची तैयार ना हो जाए तब तक साहित्य का सटीक इतिहास लेखन नहीं हो सकता। इस पद्धति में इतिहासकारों द्वारा ये प्रयास किया गया है। इस लेखन पद्धति में ग्रियर्सन ने सबसे पहले कवियों को क्रम संख्या दी है तथा इसके अनन्तर कवि का नाम देवनागरी अक्षरों में देने का प्रयत्न किया है। इसमें उन्होंने दो नियमों का पालन किया है पहले में नामों को उस ढ़ंग से लिखा गया है, जिस ढ़ंग में सर्वसाधारण उनका उच्चारण करते हैं। इस प्रणाली में उन्होंने पढ़े लिखे शिष्ट जन के उच्चारण को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है तथा इन लोगों का नाम देवनागरी लिपि में उसी तरह लिखा है जैसे अंग्रेजी में लिखा जाता है। ग्रियर्सन ने इस पद्धति में हिंदी नामों के उच्चारण को विदेशी लोगों की सहूलियत के अनुसार पद-विभाजन की दूसरी पद्धति को अपनाया जिसमें प्रत्येक पद के तुरंत बाद रूका जा सके तथा दो पदों के मध्य बिंदु दे दिया गया है जो अंग्रेजी के पूर्ण विराम से थोड़ा सा बड़ा है। जैसे- 'देओकी-नंदन-सुकल'। ग्रियर्सन ने इस पद्धति में लेखक व कवि के नाम के साथ उनके पिता का नाम, स्थान तथा समय के बारे में भी जानकारी दी है। किसी कवि के इतिवृत्त में अगर कोई अन्य कवि ज्ञात हुआ भी है तो उसकी भी क्रम संख्या सुविधानुसार नाम के आगे कोष्टक में दे दी गई है। कालक्रमानुसार पद्धति तथा

ग्रियर्सन के बारे में गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है, "उन्होंने सामग्री को यथासंभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ग्रन्थ को विभिन्न कालखंडों में विभक्त किया गया है तथा प्रत्येक अध्याय काल-विशेष का सूचक है। प्रत्येक काल के गौण कवियों को प्रत्येक अध्याय के अंत में उल्लेखित किया गया है। विभिन्न युगों की काव्य-प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए उनसे संबंधित सांस्कृतिक परिस्थितियों व प्रेरणा-स्त्रोतों के भी उद्घाटन का प्रयास हुआ है।"[33] ग्रियर्सन ने अपने ग्रन्थ में प्रत्येक काल की तो नहीं लेकिन कुछ कालखंडों की सामान्य प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है, भले ही यह विवरण संक्षिप्त ही हो। कालानुक्रम पद्धति को समझने तथा इससे लिखे प्रथम इतिहास ग्रन्थ की रुपरेखा को जानने के लिए ग्रियर्सन का ग्रन्थ हिंदी पाठकों के लिए अहम भूमिका निभाता है। 'मिश्रबंधु विनोद' में भी इसी प्रणाली को अपनाया गया है। वहां भी साहित्येतिहास को कालखंडों में बांटकर कवियों का विवेचन-विश्लेषण किया है। मिश्रबंधुओं ने भी कवियों की श्रेणियां बनाकर महत्वपूर्ण कवियों की प्रवृत्तियों तथा उनकी युगीन परिस्थितियों का वर्णन किया है। इसी पद्धति को अपनाकर लिखे गए ग्रन्थों को साहित्येतिहासकारों ने इतिहास ग्रन्थ ना मानकर कवि-वृत्त-संग्रह माना है। किसी ग्रन्थ के केवल काल-विभाजन शैली को ग्रहण करने मात्र से कोई गन्थ इतिहास ग्रन्थ नहीं हो सकता। ट्रेवेल्यन का कहना है कि 'केवल तिथियों की तरह काल अवधियाँ तथ्य नहीं होतीं। वे तो अतीत की घटनाओं के सम्बन्ध में बनाये गए कामचलाऊ प्रत्यय हैं' जिससे विवेचना में आसानी होती है तथा पाठकों के लिए लेखन शैली को सुविधाजनक बनाती हैं। इन्हीं कालक्रम तथा अवधियों के बारे में बच्चन सिंह आचार्य शुक्ल के बारे में कहते हैं, "किन्तु ये कालावधियाँ ऐतिहासिक विचारों को प्राय भटका देती हैं। काल-विभाजन की अनधानता शुक्लजी से फुटकल खाता खुलवाती है। वास्तविकता तो यह है कि एक ही कालावधि में अनेक प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियां होती हैं। उनसे या तो सह-अस्तित्त्व होता है या टकराहट होती है।"[34]

कालानुक्रम पद्धति के आरम्भकर्ता ग्रियर्सन ने पहली बार इतिहास में कवियों को अंक देने वाली प्रणाली की शुरुवात की। इस पद्धति से पहले साहित्येतिहास लेखन में जो प्रयास हुए थे उनमें वर्णानुक्रम पद्धति का प्रयोग हुआ था। पूर्ववर्ती पद्धति में बहुत सारे अभावों को देखते हुए एक नयी पद्धति की जरूरत साहित्येतिहास लेखन में होती है। पहले कवियों के नाम, स्थान तथा रचनाएं इकट्ठी कर एक सिरे से वर्णक्रम से लिख दिया जाता था। ना इस शैली में युगीन परिस्थितियों, प्रवृत्तियों का जिक्र होता था ना ही कोई कालक्रम निर्धारित किया जाता था। इन सभी अभावों को देखते हुए साहित्य के इतिहास लेखन में कालानुक्रम पद्धति को अपनाया गया जिसमें प्रथम ग्रियर्सन का नाम आता है। पहली बार इतिहास ग्रन्थ में साहित्य को कालखंडों में बांटकर उसका अध्ययन इसी पद्धति को ग्रहण कर किया गया। इसके बाद साहित्येतिहास में काल-क्रम की जो परम्परा विकसित हुई वो यहीं से आरम्भ होती है।

वैज्ञानिक पद्धति :

वैज्ञानिक पद्धति में इतिहासकार तटस्थ तथा निरपेक्ष होकर तथ्यों का संकलन करता है, उसे क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित करता है तथा अंत में उसका सही विश्लेषण करता है। साहित्येतिहास लेखन में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने इस पद्धति को अपनाकर अपना ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' लिखा है। इस पद्धति में इतिहासकार प्रत्येक वस्तु में एक जरूरी तथा गतिशील विकास की प्रक्रिया को देखता है तथा उसके बाद लेखन के लिए अपनी एक समझ विकसित करता है। सामान्य व्यक्तियों के द्वारा विज्ञान को प्राकृतिक(नेचुरल) विज्ञान के विषयों के समानार्थक मान लेने की वजह से और प्राकृतिक विज्ञानों में अत्यधिक विकास के कारण ये भ्रान्ति पैदा होना स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक पद्धति का आशय केवल प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति से है। एक भ्रांति यह भी है कि वैज्ञानिक पद्धति केवल एक है जिसका मुख्य कारण इस पद्धति का एकवचन में प्रयोग होना है। वैज्ञानिक खोज की कोई भी एक निश्चित पद्धति व शैली नहीं होती। यूं कहें कोई भी अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक ही होती है जिसमें एक

निरपेक्ष अनुसन्धानकर्ता परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की सुव्यवस्थित प्रणाली प्रस्तुत करता है। कार्ल पियर्सन के अनुसार जब कोई व्यक्ति किसी भी तरह (प्रकार) के तथ्यों का वर्गीकरण करता है, उसमें परस्पर सम्बन्ध देखता है और उनके क्रम का वर्णन करता है तो वह वैज्ञानिक विधि का प्रयोग कर रहा होता है। इस विधि के बारे में स्प्रोट का मत है कि 'इस पद्धति (वैज्ञानिक) में उपकल्पना, प्रयोगीकरण और अध्ययन यंत्रों में भरोसा करना आवश्यक होता है। इन्हीं परिभाषाओं में हेगडोर्न एवं लेबोबिज वैज्ञानिक पद्धति को सोचने तथा समस्या के समाधान का एक तरीका मानते हैं। सभी मतों से यह स्पष्ट है कि यह पद्धति अध्ययन की वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित, निरपेक्ष, कार्यकारण पर आधारित, क्रमबद्ध तथा तार्किक प्रणाली है।

इस पद्धति में सत्यापनशीलता पर ध्यान दिया जाता है यानी अध्ययन के दौरान मिले तथ्य परीक्षण तथा पुनः परीक्षण के योग्य होने चाहिए। तथ्यों तथा नियमों की जांच बार-बार की जाती है। जेम्स लूथर ने कहा भी है कि जिस पद्धति में पुनः परीक्षण संभव नहीं होता, वह वैज्ञानिक नहीं हो सकती, या तो वह दार्शनिक है या काल्पनिक। इसी तरह इस पद्धति में अनिश्चितता के लिए भी कोई स्थान नहीं है। तार्किकता इस पद्धति की एक विशेषता है। तार्किकता के मुख्यतः दो भेद होते हैं, पहला निगमन जिसमें आधार वाक्यों से आवश्यक निष्कर्ष निकालते हैं तथा दूसरा आगमन जिसमें दृष्टान्तों के आधार पर सामान्यीकरण करना है। वैज्ञानिक पद्धति व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होती है। यहाँ वस्तुनिष्ठ से आशय किसी भी तथ्य तथा प्रमाण की निष्पक्षतापूर्वक जांच की योग्यता से है। वैज्ञानिक पद्धति के चार चरण मुख्य होते हैं जिसमें कार्यशील परिकल्पना का निर्माण, तथ्यों का अवलोकन तथा लेखन, इकट्ठे किये गए तथ्यों का वर्गीकरण तथा संगठन, सामान्यीकरण आदि हैं। इस पद्धति में सामग्री संकलन दो प्रकार के स्त्रोतों के माध्यम से किया जाता है। पहला ऐतिहासिक स्त्रोतों से मदद ली जाती है जिसमें पुराने ग्रन्थ, अवशेष, शिलालेख, हस्तलिखित पांडुलिपियाँ आदि से तथा दूसरा प्रत्यक्ष निरीक्षण,

प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा जीवित सूचनादाताओं से। जब सारी सामग्री को इकट्ठा कर लिया जाता है, उसके बाद सभी तथ्यों को आवश्यकतानुसार वर्गीकृत किया जाता है। इस वर्गीकरण से इतिहासकार के इतिहासबोध का पता चलता है क्योंकि वर्गीकरण का कार्य जितना कुशलता से किया जाएगा उतना ही अनुसंधानकर्ता के लिए निष्कर्षों तक पहुँचना सरल होता जाता है।

गणपतिचन्द्र गुप्त अपने इस दृष्टिकोण के बारे में कहते हैं, "इतिहास का सम्बन्ध अतीत की व्याख्या से है तथा प्रत्येक व्याख्या के मूल में व्याख्याता का दृष्टिकोण अनुस्यूत रहता है। प्रस्तुत इतिहास में प्रयुक्त दृष्टिकोण को 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' की संज्ञा दी जा सकती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी पुष्ट सिद्धांत या प्रतिष्ठित नियम के आधार पर वस्तु की तथ्यपरक, सर्वांगीण एवं बौद्धिक व्याख्या सुस्पष्ट शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।"[35] वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता तथा साहित्य में इस पद्धति की जरूरत पर भी अपना मत इन्होंने बतलाया है, "किन्तु उनके इतिहास-लेखन के अनन्तर विगत तीस-पैंतीस वर्षों में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसन्धान कार्य हुआ हैं जिससे बहुत सी ऐसी नयी सामग्री, नए तथ्य और नए निष्कर्ष प्रकाश में आए हैं जो आचार्य शुक्ल के वर्गीकरण-विश्लेषण आदि के सर्वथा प्रतिकूल पड़ते हैं।"[36] साहित्य सम्बंधित मिली नयी जानकारी तथा साहित्य इतिहास में संशोधन के लिए उन्होंने इस दृष्टि को अपनाया तथा वैज्ञानिक दृष्टि से साहित्येतिहास ग्रन्थ लिखा। गुप्तजी लिखते हैं कि विज्ञान के अनुसार संसार की रचना एक ही दम नहीं हुई है अपितु उसका क्रमशः विकास हुआ है। वे अपने विकासवादी सिद्धांत के बारे में लिखते हैं, "मैं विनम्रतापूर्वक यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि प्रस्तुत कृति में स्थापित विकासवाद का सामान्य सिद्धांत तथा साहित्य के विकास सम्बन्धी विभिन्न स्थापनाएं और साहित्य के रूपात्मक, प्रवृत्यात्मक एवं गुणात्मक विकास सम्बन्धी विभिन्न निष्कर्ष न केवल हिंदी के इतिहास-लेखन-क्षेत्र के लिए अपितु विश्व के इतिहास-लेखन-क्षेत्र के लिए भी नए हैं।"[37]

स्त्रीवादी पद्धति :

हिंदी साहित्येतिहास में अनेक पद्धतियों का प्रयोग कर इतिहास ग्रन्थ लिखे गए हैं। अब तक के इतिहास गन्थ युगों, सम्प्रदायों तथा बोलियों आदि के आधार पर साहित्य को बांटकर, सोचकर व देखकर लिखा गया है। लेकिन इस पूरी परम्परा को देखते हैं तो अनेक आलोचक हिंदी साहित्य को पुरुषवादी दृष्टिकोण से लिखा गया साहित्येतिहास कहते हैं तथा इस पूरे इतिहास को आधा इतिहास कहा गया है। इस संदर्भ में अनेक तर्क व मत भी पेश किए गए जिनमें कहा गया है कि शायद युगीन परिस्थितियों में किसी भी तरह के अधिकारों की चेतना स्वयं स्त्रियों में ना थी। स्त्रीवादी दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य में सुमन राजे ने अपना इतिहास ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' लिखा जिसमें उन्होंने इस पूरी परम्परा में जिन महिला लेखिकाओं का जिक्र किसी भी कारणों से नहीं हो पाया, उनका विवेचन अपने ग्रन्थ में किया है। सभी धाराओं के साथ महिला-लेखन भी सदैव निरंतर बहने वाली धारा रही है जिसे सिर्फ थोड़े से अनुसन्धान तथा आकर देने की आवश्यकता रही है। सुमन राजे कहती हैं कि साहित्य के इतिहास में महिला लेखन को सबसे पहले राजशेखर ने बतलाया था। उनका कथन था कि पुरुषों की भांति महिलायें भी कवि हो सकती हैं। ज्ञान का संसार आत्मा से सम्बंधित है, उसमें पुरुष व महिला रूपी कोई लिंगभेद नहीं होता। उन्होंने यह भी कहा है कि जब इतिहास लेखन को व्यापक दृष्टि से देखते हैं तो अनेक राजकुमारियां, वेश्याएं, मंत्रियों की पुत्रियाँ, शास्त्रों को जानने वाली अनेक कवयित्रियाँ और विदुषियां विद्यमान रही हैं। वे स्वीकार करते हैं कि महिला लेखन के साक्ष्य सिर्फ देखने और सुनने में ही मौजूद हैं। सुमन राजे के अनुसार, "अधिकाँश प्राचीन साहित्येतिहास 'स्मृत' साहित्येतिहास हैं। आज जिस साक्ष्य के आधार पर इतिहास की इमारत खड़ी की जाती है, वे बर्तनों और औजारों के टूटे-फूटे जमीन की कोख में गढ़े टुकड़े हैं। लेकिन साहित्य का साक्ष्य 'शब्द' होता है जो अपने मूल रूप में 'श्रुत' तथा 'स्मृत' हैं। जन इतिहास 'स्मृत' ही होते हैं और पीढ़ियां अपने तरीके से

'सत्य' वहन करती हैं।"[38] उनके अनुसार बिना महिला लेखन को साहित्येतिहास में शामिल किए यह इतिहास आधा ही रहेगा।

स्त्रीवाद को हम एक राजनीतिक चेतना के रूप में भी देख सकते हैं जो सामाजिक परिवर्तन लाने का प्रयत्न करती है। इस चेतना का अविष्कार स्त्रीवादी साहित्य में अलग-अलग दृष्टिकोणों से अलग-अलग स्तरों पर हुआ है। स्त्रीवादी चेतना मार्क्सवादी, समाजवादी, तथा उत्तर-आधुनिकता आदि कई विचारधाराओं से खुद को जोड़कर लैंगिक असमानता के मुद्दे को उठाती तथा संबोधित करती है। कुछ आलोचकों का मानना भी है कि उत्तर-आधुनिकता की एक प्रवृत्ति स्त्रीवाद भी है। परम्परागत साहित्य में एक महिला का स्वर दबा हुआ तथा पुरुष लेखन की स्थापना देखने को मिलती है। इसलिए स्त्रीवाद एक नए पाठ तथा तरीके की वकालत करता है। स्त्रीवादी पद्धति में स्त्रीवादी साहित्य विभिन्न स्त्रीवादी संवेदनाओं को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। पश्चिमी देशों में स्त्रीवाद का उदय 1960 ई. के आस-पास माना जाता है। उसके बाद भारत में भी इसका प्रभाव पड़ा। माना जाता है कि स्त्रीवादी साहित्य तथा समालोचना इसी आन्दोलन से उभरे हैं।

साहित्येतिहास में यह पद्धति उन लेखिकाओं का उल्लेख करती है जो साहित्य के प्रत्येक कालखंड तथा धारा में मौजूद रही हैं। इस पर सुमन राजे का मत है, "साहित्येतिहास की पारम्परिक मान्यता यह रही है कि एक कालखंड में एक सामान्य रूप से पहचानी जाने वाली रचनाएँ आती हैं, जिसके आधार पर उस कालखंड का नामकरण किया जा सकता है। मैं कालखंड की इस अवधारणा को महिला-लेखन की दृष्टि से परखने का प्रस्ताव रखती हूँ।"[39] इन्होंने प्रत्येक कालखंड की प्रवृत्तियों के आधार पर अनेक लेखिकाओं को ग्रन्थ में शामिल किया है। इस पद्धति के माध्यम से लेखिका ने साहित्य में 'तीसरी परम्परा' की खोज का प्रयास किया है, "साहित्य में 'दूसरी परम्परा' की खोज तो की गई परन्तु यह तीसरी परम्परा जब तक नहीं खोज ली जाती तब तक तक साहित्येतिहास 'आधा इतिहास' ही है।"[40]

साहित्येतिहास लेखन में आलोचकों द्वारा जो लिखा गया है तथा उल्लेखित लिया गया है, उसके विपरीत जो बचा रह गया है उसकी बात इस पद्धति के माध्यम से की गई है। शुक्ल जी के मतों से सुमन राजे का विरोधाभास है कि, "लेकिन शुक्लजी ने 'मिश्रबंधु विनोद' का मजाक उड़ाया और 'कविता कौमुदी' का नोटिस तक नहीं लिया। इस प्रकार शुक्लजी के इतिहास ने एक बंद 'ट्रैक' बनाया, जिस पर हिंदी साहित्येतिहास अभी तक घूम रहा है। कहना न होगा कि ये सभी इतिहास महिला-रचनाकारों की पहचान से लगभग शून्य थे।"[41] इन सभी विरोधाभासों के साथ ये पद्धति पुरुष लेखन के साथ महिला लेखन को शामिल करने की वकालत करती है।

समाजशास्त्रीय पद्धति :

प्न्वाकरे के कथनानुसार समाजशास्त्र के लिए उचित पद्धतियों के सवाल पर काफी विवाद हुए हैं। प्रत्येक समाजशास्त्रीय सिद्धांतकार की विषय के प्रति एक नया ही दृष्टिकोण अपनाने की प्रवृत्ति रही है। इन्होंने कहा है कि 'यह एक ऐसा विज्ञान है जिसमें पद्धतियाँ तो बहुत हैं लेकिन उनका नतीजा कुछ नहीं आता।' टी.बी.बाटमोर इस पर अपना मत रखते हैं, "यह सही बात है कि पिछले सौ सालों में समाजशास्त्रियों ने ऐसे उच्चस्तरीय सामान्यीकरण नहीं प्रस्तुत किये जिनको मिलाकर किसी भरपूर वैज्ञानिक सिद्धांत का निर्माण किया जा सके।....वैज्ञानिक सामान्यीकरण के थोड़ा निचले स्तर पर अवधारणाओं का एक ढ़ांचा बनाने, सामाजिक नमूनों को वर्गीकृत करने और सामाजिक परिघटनाओं के बीच कुछ प्राथमिक अन्तःसम्बन्ध स्थापित करने के मामले में काफी कुछ हासिल किया गया है।"[42] प्रत्यक्षवादियों तथा प्रत्यक्षवाद-विरोधियों के मध्य यह पद्धति सम्बन्धी विवाद जर्मनी में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ तथा इसका प्रभाव मैक्स वेबर के लेखन में साफ-साफ दिखाई देता है। इंग्लैंड के बहुत से लेखकों ने सामाजिक विज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञान की पद्धति में स्पष्ट विभाजन करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में उनका तर्क है, "चूँकि समाजशास्त्र जीवन पद्धतियों का अध्ययन करता है

इसलिए इसकी पद्धति भाषा दर्शन के करीब है या उससे अभिन्न है ।"[43] समाजशास्त्रीय पद्धति में ऐतिहासिक, तुलनात्मक, प्रकार्यवादी, रूपवादी तथा संरचनावादी नामक पाँच दृष्टिकोण सम्मलित होते हैं।

ऐतिहासिक समाजशास्त्र के मुख्यत दो रूप दिखाई देते हैं। पहला उन शुरूआती समाजशास्त्रियों का है जो पहले इतिहास-दर्शन तथा उसके पश्चात विकास के जीव वैज्ञानिक सिद्धांत से प्रभावित रहा है। इस दृष्टिकोण में सिद्धांत तथा शोध सम्बन्धी समस्याओं का एक निश्चित क्रम होता है जो सामाजिक संस्थाओं, समाज और सभ्यताओं की उत्पत्ति तथा विकास और रूपांतरण सम्बन्धी समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस पद्धति में समाज की सभी मुख्य संस्थाओं तथा मानव इतिहास के समस्त विस्तार पर विचार किया जाता है। इस दृष्टिकोण के दूसरे रूप में सामाजिक संरचना में आए विशेष ऐतिहासिक बदलावों तथा समाज के प्रकारों की छानबीन की जाती है। इसका प्रभाव हमें मैक्स वेबर तथा उससे प्रभावित कुछ परवर्ती समाजशास्त्रियों में देखने को मिलता है।

तुलनात्मक पद्धति बहुत दिनों तक समाजशास्त्र में सबसे उत्कृष्ट मानी जाती रही। "सबसे पहले दुर्खीम ने 'दि रूल्स ऑफ़ सोशियोलोजिकल मेथड' में स्पष्ट रूप से इस पद्धति के महत्त्व को स्थापित किया ।"[44] कुछ आलोचकों ने इस पद्धति को परिकल्पनाओं की परीक्षा का एक रास्ता मात्र माना है। इस पद्धति में सामाजिक प्रक्रियाओं की तुलना की जाती है। इसमें कुछ विद्वानों का तर्क है कि तुलना उन्हीं समाजों के बीच होनी चाहिए जो व्यापक तौर पर समान हों अन्यथा इस दृष्टिकोण से काफी गलतफहमी पैदा हो सकती हैं। बहरहाल उन्नीसवीं सदी के समर्थक इस पद्धति को सामान्य उपयोग की पद्धति मानते हैं।

प्रकार्यवाद के सम्बन्ध में आलोचकों का मत है कि, "यह तुलनात्मक पद्धति के अपरिष्कृत और सतही प्रयोग की आलोचना थी और 'अनुमान-आधारित इतिहास' की पद्धति की भी आलोचना थी जो

समकालीन आदिम समाजों के असत्यापित और अव्यवस्थित आंकड़ों का उपयोग मानवीय सामाजिक जीवन के प्रारम्भिक चरणों की पुनर्रचना के लिए किया जाता था। समूची मानव प्रजाति के सामाजिक इतिहास का वैज्ञानिक विवरण देने की विकासवादियों की इच्छा या दावे की भी यह आलोचना थी।"[45] सामाजिक प्रकार्य की अवधारणा हरबर्ट स्पेंसर द्वारा उन्नीसवीं सदी में सूत्रबद्ध की गई। इस दृष्टिकोण की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये साधारण से विचार को भी ज्यादा जोर तथा स्पष्टता के साथ कहता है कि प्रत्येक विशेष समाज में अलग-अलग तरह की सामाजिक गतिविधियाँ आपस में जुड़ी होती हैं।

रूपगत समाजशास्त्र के उद्भावक गेआर्ग जीम्मल को माना जाता है। यह दृष्टिकोण भी शुरूआती समाजशास्त्रियों के विकासवादी तथा विश्वकोशीय विज्ञान के विरुद्ध प्रतिक्रिया है। जीम्मल ने अपने लेख 'दि प्रोब्लम ऑफ़ सोशियोलोजी' में समाजशास्त्र को नई पद्धति बतलाया है तथा इस दृष्टिकोण को अन्य सामाजिक विज्ञान जिन तथ्यों पर विचार कर चुके हैं, उसे नए तरीके से देखने वाला बतलाया है।

संरचनावाद के उद्भावक 'क्लाड लेवी-स्त्रास' को माना जाता है, "अब तक समाजशास्त्र में संरचनावादी पद्धति के उपयोग का कोई व्यवस्थित प्रयास तो होता नहीं दिखता और साफ़-साफ़ यह भी देखना आसान नहीं है कि इस पद्धति में समस्याओं की दिशा और जाँच-पड़ताल का स्वरूप कैसा होगा।"[46] इस दृष्टिकोण की सबसे प्रमुख विशेषता शायद यह है कि मानव समाज के सार्वभौम तत्वों की खोज करना इसका लक्ष्य है।

प्रस्तुत अध्याय में इतिहास और साहित्येतिहास की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन किया है। इतिहास लेखन कार्य जब से शुरू हुआ है तथा उसके लेखन कार्य के लिए जिस शैली व परम्परा से संपादन कार्य हुआ, उन सभी पद्धतियों का जिक्र इस अध्याय में किया गया है। इतिहास लेखन की पद्धतियों जैसे यूनानी, रोमन, चीनी, प्राचीन भारतीय, मध्यकालीन भारतीय और इतिहास लेखन की आधुनिक परम्पराओं का वर्णन किया गया है। इसी तरह साहित्येतिहास लेखन जबसे आरम्भ हुआ तथा किन-

किन पद्धतियों का प्रयोग हुआ, सबका विस्तृत वर्णन अध्याय में किया है । वर्णानुक्रम पद्धति से वैज्ञानिक तथा स्त्रीवादी पद्धति तक सभी पद्धतियों की विशेषता, प्रयोग करके लिखे गए ग्रन्थ, शैली तथा उससे सम्बन्धी सभी मतों का अध्ययन किया गया है । इनके साथ ही समाजशास्त्रीय पद्धतियों का अध्ययन भी अध्याय में किया है।

संदर्भ :

1. बटरफिल्ड; हिस्टोरियोग्राफी इन डिक्शनरी ऑफ़ हिस्ट्री ऑफ़ आइडियाज, वोल्यूम-2; न्यूयार्क 1973; पृ.- 464
2. श्रीधरन, ई; इतिहास लेख; ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड; 2011; पृ.- 2
3. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र; इतिहास स्वरूप तथा सिद्धांत; जयपुर; 1973; पृ.-1
4. प्रकाश, बुद्ध; इतिहास दर्शन; सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग; प्रथम संस्करण 1962; पृ.- 68
5. मार्विक, ऑर्थर; व्हाट हिस्ट्री इज; ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस; 1970; पृ.-23-24
6. स्टर्न; वराइटीज ऑफ़ हिस्ट्री; वर्ल्ड पब्लिशिंग कम्पनी; 1961; पृ.144
7. डयुरांट; स्टोरी ऑफ़ सिविलाइज़ेशन II: दि लाइफ ऑफ़ ग्रीस; एम जे ऍफ़ बुक्स, 1992; पृ.- 430
8. कोलिंगवुड; आईडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफ़ोर्ड, 1956; पृ.- 19
9. डयुरांट; स्टोरी ऑफ़ सिविलाइज़ेशन: दि लाइफ ऑफ़ ग्रीस; एम जे ऍफ़ बुक्स, 1992; पृ.- 434
10. वही; पृ.- 434
11. कोलिंगवुड; आईडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफ़ोर्ड, 1956; पृ.- 27
12. थोमसन एंड होम; हिस्ट्री एंड हिस्टोरिकल राइटिंग; मकमिलन कंपनी न्यूयार्क, 1942; पृ. 65
13. वही; पृ.-76
14. श्रीधरन, ई; इतिहास लेख; ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड; 2011; पृ.- 24
15. कोलिंगवुड; आईडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफ़ोर्ड, 1956; पृ.- 40
16. वही; पृ.- 40
17. डयुरांट; स्टोरी ऑफ़ सिविलाइज़ेशन I : अवर ओरिएंटल हेरिटेज; 2011; पृ.-642
18. डयुरांट; सीजर एंड क्राइस्ट;फ़ाईन कम्युनिकेशन, यू.एस, 1994; पृ.- 665
19. कीथ, ए.बी.; हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर; मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड नयी दिल्ली, 1993; पृ.-144
20. स्मिथ; ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफ़ोर्ड, 1981; पृ.-xiii

21. कीथ, ए.बी.; हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर; मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड नयी दिल्ली, 1993; पृ.- 144-147

22. श्रीधरन, ई; इतिहास लेख; ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड; 2011; पृ.- 281

23. वही; पृ.- 305

24. हार्डी, पीटर; सम स्टडीज इन प्री-मुगल मुस्लिमस हिस्टोरिओग्राफ़ी, इन फिलिप्स एड., हिस्टोरियंस ऑफ़ इंडिया; पाकिस्तान एंड सिलोन, पृ.-117

25. मैकडोनल; ए हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर; दिल्ली, 1972; पृ.- 1

26. मुखर्जी, विलियम जोन्स; ए स्टडी इन एटीन्थ सेंचुरी ब्रिटिश अटीत्युड्स टू इंडिया; कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस कैंब्रिज, 1968; पृ.-95

27. श्रीधरन, ई; इतिहास लेख; ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड; 2011; पृ.- 393

28. शर्मा, नलिन विलोचन; साहित्य का इतिहास-दर्शन; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना; पृ.-70

29. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; कमल प्रकाशन, नयी दिल्ली; पृ.-15

30. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर (अनु.); हिन्दुई साहित्य का इतिहास; हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद; पृ.-भूमिका

31. शर्मा, नलिन विलोचन; साहित्य का इतिहास-दर्शन; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना; पृ.-75

32. श्रीवास्तव, डॉ. मुरलीधर; हिंदी के यूरोपीय विद्वान: व्यक्तित्व और कृतित्व; बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी पटना; पृ.-85

33. गुप्त, गणपतिचन्द्र, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; पृ.-31

34. सिंह, बच्चन; हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नयी दिल्ली; पृ.-भूमिका-viii

35. गुप्त, गणपतिचन्द्र, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; पृ.-प्राक्कथन-vi

36. वही; प्राक्कथन-v

37. वही; प्राक्कथन-vii

38. राजे, सुमन; हिंदी साहित्य का आधा इतिहास; भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली; पृ.- 19-20

39. वही; पृ.- 22

40. वही; पृ.- 31

41. वही; पृ.-60

42. प्रधान, गोपाल (अनु.); समाजशास्त्र; ग्रन्थ शिल्पी नयी दिल्ली; पृ.- 45

43. वही; पृ.-46

44. वही; पृ.- 51

45. वही; पृ.- 53

46. वही; पृ.-57